लेख

मथुरा से भंवरी तक

लक्ष्मी मूर्ति

सन 1972, सोलह वर्षीय आदिवासी लड़की मथुरा का चंद्रपुर, महाराष्ट्र की पुलिस हिरासत में सामूहिक बलात्कार; इस मामले ने बलात्कार और आपराधिक क़ानून में संशोधन की मांग को एक देशव्यापी अभियान का रूप प्रदान किया था। इस वर्ष मथुरा 56 साल की हो गई है।

सन 1992, राजस्थान के भटेरी गांव की भंवरी देवी। जिसके साथ ऊंची जाति ने पुरुषों के सामूहिक बलात्कार किया; इस घटना ने कार्यस्थल पर यौन हिंसा क़ानून की पुरज़ोर मांग को तीव्रता प्रदान की। इस साल भंवरी देवी भी 56 वर्ष की हुई हैं।

महिला आंदोलन के इन दोनों प्रतीकों को शायद बलात्कार क़ानून में संशोधन होने से कोई सीधा फायदा नहीं पहुंचा है। मथुरा कुछ साल एक गुमनामी का जीवन जीती रही और फिर शादी करके आगे बढ़ गई। उसको इस बात की कोई खबर नहीं थी कि भारतीय प्रजातंत्र के एक स्तंभ, सर्वोच्च न्यायालय को उसकी ओर से चुनौती दी जा रही थी। 1980 में राष्ट्रीय मीडिया बलात्कार क़ानून में आए बदलावों के लिए ज़िम्मेदार मथुरा का साक्षात्कार करने उसके गांव पहुंचे। तब मथुरा की उम्र बीस वर्ष थी। उसके बाद मथुरा के बारे में कुछ ख़ास सुनने को नहीं मिला।

इसके बावजूद *'मथुरा केस'* नारीवादी इतिहास में न्यायपालिका के पितृसत्तात्मक रवैयों को चुनौती देने के लिए दर्ज है। हालांकि मथुरा बलात्कार कांड 1972 में हुआ था पर यह मामला 1979 में सार्वजनिक बना जब सर्वोच्च न्यायालय ने बंबई उच्च न्यायालय के फ़ैसले जिसमें पुलिसकर्मियों को अपराधी करार दिया गया था, को इस बिनाह पर खारिज़ कर दिया कि वादी 'सेक्स की आदी' थी। फ़ैसले ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि मथुरा ने 'बचाव के लिए कोई गुहार नहीं लगाई' तथा 'उसके शरीर पर कोई चोट या संघर्ष के चिन्ह नहीं पाये गए।' इस निर्णय ने 'सहमति' और 'समर्पण' के अर्थ तथा इस मानक पर एक महत्वपूर्ण बहस का आगाज़ किया कि 'सहमति में समर्पण' निहित होता है परन्तु 'समर्पण में सहमति' शामिल हो ऐसा हरगिज़ ज़रूरी नहीं है।

भारतीय दंड संहिता व न्यायिक कार्रवाई दोनों की अनुपयुक्ताओं को सामने लाते हुए क़ानून के चार प्रोफ़ेसरों ने *मथुरा केस* के न्यायाधीशों की भर्त्सना करते हुए "भारतीय क़ानून व संविधान में दर्ज मानव अधिकारों को त्यागने वाले इस अनोखे फ़ैसले" पर सवाल उठाए। पत्र में मथुरा के सामाजिक संदर्भ पर भी ज़ोर दिया गया, "युवा पीड़िता का निम्न सामाजिक-आर्थिक दर्जा, क़ानूनी हक़ों की कम जानकारी, क़ानूनी सेवाओं तक पहुंच में कमी तथा गरीब व शोषित वर्ग के लोगों में भारतीय पुलिस व थानों का खौफ़"। पत्र ने कुछ बुनियादी प्रश्न भी उठाए: "क्या भारत की अनपढ़, मेहनतकश, राजनैतिक तौर पर मूक मथुराओं के भाग्य में भारतीय संविधान बनने से पहले वाले हालातों से जूझना लिखा है? आज दांव पर हमारी संवैधानिकता और मानव अधिकार सुरक्षा लगी है।"

बलात्कार के जुर्म को लैंगिक असमानताओं और सत्ता संबंधों के संदर्भ में देखने के परिणाम स्वरूप 1983 में बलात्कार क़ानून में प्रमुख संशोधन किए गए जब "हिरासत में बलात्कार" के सिद्धान्त को इसमें जोड़ते हुए मामले में "पुख्ता सबूत मुहैय्या कराने का दायित्व" अभियुक्त पर डाला गया। इसके अलावा पहली बार बंद कमरे में सुनवाई व पीड़िता की पहचान गुप्त रखने का निर्देश देते हुए बलात्कार के लिए कठोर सज़ा का प्रावधान भी बनाया गया।

कोई वास्तविक बदलाव नहीं

आज इन संशोधनों के दस वर्ष बाद भी कोई महत्वपूर्ण बदलाव देखने को नहीं मिले हैं। 1992 में राजस्थान की भंवरी देवी (जो *महिला विकास कार्यक्रम* में एक साथिन का काम करती थी) का बाल-विवाह रोकने की हिमाकत करने पर ऊंची जाति के पांच पुरुषों द्वारा बलात्कार किया गया। महिला अधिकार कार्यकर्ता होने के कारण भंवरी बलात्कार की रिपोर्ट लिखवाने के लिए आवश्यक कार्रवाइयों से परिचित थी और उसने अपने गांव से 55 किलोमीटर दूर जयपुर शहर के उदासीन व पूर्वाग्रह पाले पुलिस व मेडिकलकर्मियों के साथ संघर्ष किया। भंवरी का चिकित्सीय परीक्षण बलात्कार के 52 घंटों के बाद हुआ। क़ानूनी प्रक्रिया ने भी अपनी धीमी गति बरकरार रखी। एक साल बाद चार्जशीट दाखिल हुई और 1995 में सत्र अदालत ने सभी आरोपियों को इस आधार पर रिहा कर दिया कि "ऊंची जाति के पुरुष एक दलित महिला का बलात्कार हरगिज़ नहीं कर सकते।" न्यायालय को इस बात पर भी विश्वास नहीं था कि "चाचा और भतीजा दोनों एक साथ, एक ही औरत का बलात्कार कर सकते हैं।" आरोपी छूट गये और जाति व्यवस्था व परिवार का दण्डाभाव बना रहा।

2007 तक पांच में से दो अभियुक्तों की मृत्यु हो चुकी थी और भंवरी मामले की अपील अदालत में धूल खा रही थी। मथुरा की तरह भंवरी की ज़िंदगी भी अपनी रफ़्तार से चल रही है। आज भंवरी हमारे देश में संघर्षरत औरतों के लिए एक मिसाल बन गई है। उसे बतौर 'विरोध का प्रतीक' अनेक सम्मानों से नवाज़ा और सराहा भी जा रहा है। हालांकि बलात्कार के केस में अभी उसकी जीत नहीं हुई है इसके बावजूद उसके विरोध की शक्ति जटिल क़ानूनी पेचीदगियों, जो न्याय के भ्रामक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करती हैं, पर विजय हासिल करने में कामयाब हुई है। अभी बंगलौर व मंगलोर शहरों में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर सार्वजनिक सभाओं में भंवरी की ऊर्जा ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया और उम्मीद की इस लौ को जिलाए रखा कि औरतें हमेशा कमज़ोर और बेचारी नहीं होती। "मेरा पेट सिर्फ़ न्याय से भर सकता है, सम्मानों से नहीं— भंवरी ने महिला आंदोलन के लिए आज तक के सबसे कठिन संघर्ष — समाज में न्याय की धारणा और व्यक्तिगत आघात के बीच तालमेल बनाने के प्रयास को सामने लाते हुए ऐलान किया।

हालांकि बलात्कार का केस घिसट रहा है पर भवंरी के अनुभव ने यौन उत्पीड़न के क़ानून में मूल बदलावों को तीव्रता प्रदान की है। यह नई सोच जो यौन उत्पीड़न के सिद्धान्त को इज़्ज़त, मर्यादा और मिल्कियत की धारणा से अलग रखते हुए, बतौर संवैधानिक अधिकारों की गारंटी के ढांचे में स्थापित करती है, ग्रामीण परिवेश में महिला कार्यकर्ताओं के अनिश्चित दर्जे की न्यायिक स्वीकृति से उपजी है। महिला समूहों द्वारा 1997 में सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका के जवाब में यौन उत्पीड़न पर *विशाखा मार्गदर्शक* पारित किए गए। सर्वोच्च न्यायालय मे माना कि कार्यस्थल पर यौन हिंसा—

> *संविधान की धारा 14-समानता का अधिकार तथा धारा 19-किसी भी प्रकार का रोज़गार, व्यवसाय या बिजनेस करने का अधिकार, का उल्लंघन करती है। काम करने का अधिकार एक सुरक्षित माहौल में काम करने की सहूलियत तथा गरिमामय जीवन जीने के अधिकार की मांग करता है। अधिकारों को सही मायने में अर्थपूर्ण बनाने के लिए यौन उत्पीड़न से पैदा हुए ख़तरों को हटाना ज़रूरी है।*

यह विडम्बना ही तो है कि महिलाओं के सुरक्षित माहौल में काम करने के अधिकार से संबंधित मूल सिद्धांत राजस्थान के *महिला विकास कार्यक्रम* के असुरक्षित माहौल और जिस काम को सरकार ने कभी भी "रोज़गार" का दर्जा नहीं दिया—से उत्पन्न हुए हैं।

यह विशेष तौर पर एक विरोधाभास ही है क्योंकि यह कार्यक्रम 1970 के संघटन और उसके बाद 1975 में महिला अध्ययन से जुड़ी दिग्गज महिलाओं- फूलरेणु गुहा, लतिका सरकार व वीणा मजूमदार द्वारा लिखी रिपोर्ट— *"टूवर्ड्ज़ इक्वॉलिटीः रिपोर्ट ऑफ़ द कमेटी ऑन द स्टेटस ऑफ़ विमेन इन इण्डिया"* के नतीजतन ही शुरू किया गया था। इसी के बाद छठी पंचवर्षीय योजना में पहली बार महिला व विकास पर एक अध्याय जोड़ा गया जिसमें निम्न उल्लेखित था—

> *एक निम्न शिक्षा दर और निम्न आर्थिक दर्जा महिलाओं की आर्थिक प्रगति की ज़रूरत पर ज़ोर देते हैं। औरतों के सामाजिक-आर्थिक दर्जे में बेहतरी देश में मौजूद सामाजिक ढांचे, रवैयों, मूल्य ढांचों में सामाजिक बदलावों पर काफी हद तक निर्भर करेगी।*

1984 में राजस्थान का *महिला विकास अभिकरण* इन हालातों के प्रतिकार के रूप में शुरू किया गया था क्योंकि आज़ादी के बाद होने वाले विकास के फायदे महिलाओं तक नहीं पहुंचे थे। इस कार्यक्रम के नीति दस्तावेज़ के अनुसार—

अधिकांश सरकारी स्कीमें जिनमें विकास के लिए परिवारों को शामिल करना आवश्यक है औरतों को दरकिनार करने के कारण बुरी तरह असफल रही हैं। यह सिर्फ़ बाल कल्याण कार्यक्रम जिनमें औरतों की शिरकत को भली-भांति स्वीकारा जाता रहा है, का ही सच नहीं है बल्कि डेरी विकास, सामाजिक वनखंड, आईआरडीपी, कृषि उत्पादन आदि में भी देखा गया है। वाकई महिलाओं का विकास राजस्थान के लिए सबसे कठिन चुनौती है।

बदलाव के मुख्य स्रोत

इसमें कोई शक़ नहीं है कि ग्रामीण राजस्थान में बदलाव का मुख्य स्रोत *महिला विकास कार्यक्रम* रहा है जिसके महिला आंदोलन से जुड़ाव ने महिला सशक्तिकरण की मूलभूत समझ — वह समझ जिसका अपना एक अलग जीवन था, के विकास में प्रमुख भूमिका अदा की। गांव की महिला "जाजम" (सभांए) महिला मुद्दों को उठाने के अनोखे मंच बन गए और महिलाएं पारंम्परिक रूढ़ियां तोड़कर वर्जित विषयों पर बातचीत करने लगीं। उन्होंने जाति पंचायतों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। वे घरेलू हिंसा व अन्य तरह की हिंसाओं का विरोध करने लगीं तथा जायदाद व अन्य हक़ों की मांग भी रखने लगीं। सरकारी स्कीमों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, जनवितरण, न्यूनतम मज़दूरी, ज़मीन के रिकार्ड, जायदाद तथा अन्य क़ानूनी हक़ों की जानकारी सामाजिक व लैंगिक असमानताओं को चुनौती देने के हथियार बन गए। औरतें अपने हक़ों के प्रति सजग हो गईं। वे भ्रष्ट व्यवहारों को पहचानने लगीं तथा दूसरी साथिनों के साथ मिलकर शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करने लगीं।

शुरूआत में तो महिलाओं को *महिला विकास कार्यक्रम* का सहयोग मिला परन्तु समय के साथ-साथ महिलाओं की शक्ति ने ग्रामीण पदानुक्रम को चोट पहुंचानी शुरू कर दी। फलस्वरूप राज्य ने अपनी सत्ता का इस्तेमाल महिलाओं के दावों को नियंत्रित करने में लगा दिया। असंतोष बढ़ने के साथ-साथ कार्यक्रम में निहित विरोधाभास सामने आने लगे। इन दरारों को पाटने के लिए कोई आंतरिक नुस्खे मौजूद नहीं थे। जब साथिन को अपने रोज़गार के शोषित स्वरूप और कार्यक्रम के पदानुक्रम में तनख्वाह को लेकर गुंथी असमानताएं नज़र आईं तब हालात की विडम्बनाएं सतह पर तैरने लगीं।

इस कार्यक्रम का लक्ष्य था ग्रामीण महिलाओं को जानकारी के सम्प्रेषण व शिक्षा प्रशिक्षण के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक दर्जे की पहचान कराना जिससे वे अपने हालात बेहतर बनाकर सशक्तता हासिल कर सकें। साथिनों का काम था सरकार व जनता के बीच एक पुल की भूमिका निभाते हुए सरकारी कार्यक्रमों का कार्यान्वयन और सफलता सुनिश्चित करना। वे काम करती रहीं और आज भी बदहाल हालातों में मात्र सोलह सौ रुपये माहवार (जो 1990 में *महिला विकास अभिकरण साथिन कर्मचारी संघ* के अभियान स्वरूप 200 माहवार से बढ़ाया गया था) पर काम करती हैं। रोज़गार असुरक्षा, कम तनख्वाह के अतिरिक्त काम का चुनौतीपूर्ण स्वरूप भी उनकी तकलीफ़ों में इजाफ़ा करता है।

दहेज, बाल विवाह और लिंग परीक्षण जैसी सामाजिक कुरीतियों की रोकथाम के लिए चेतना जागृति काफ़ी खतरनाक काम हो सकता है, ख़ासकार ग्रामीण स्तर पर जहां सामंती, जातीय और पितृसत्तात्मक ढांचे गहरे पैठे हैं। भंवरी ने अपने समुदाय में जब इन कुरीतियों को खत्म करने की कोशिश की तो उसका बलात्कार किया गया। अपने दोस्तों, रिश्तेदारों व पड़ोसियों के घरों में घुसकर यह मांग रखना कि वे मौजूदा रिवाजों के ख़िलाफ़ जाएं या बाल विवाह न करें अथवा दहेज लेने से इंकार कर दें एक बेहद साहसी काम है। इस जोखिम भरे काम को करते समय कोई रोज़गार सुरक्षा सुविधाएं, कल्याणकारी मानक यहां तक कि मूल साधन जैसे यातायात, मालिक या सरकार का सहयोग मुहैय्या नहीं होता। अनौपचारिक क्षेत्र में महिला कामगरों के काम का असुरक्षित माहौल एक बहुत बड़ा व जटिल मुद्दा है। पर भंवरी देवी संघर्ष से एक सुरक्षित माहौल के लिए निकलने वाला क़ानून, महिला कामगरों के हक़ों को सुनिश्चित करने की दिशा में एक ठोस क़दम है।

यौन उत्पीड़न क़ानून

22 अप्रैल को क़ानून बनने वाला *कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (बचाव, रोकथाम व प्रतिकार) अधिनियम 2013* महिलाओं के यौन उत्पीड़न मुक्त सुरक्षित माहौल में काम करने के अधिकार को स्वीकृति देने की दिशा में एक ठोस नागरिक प्रतिकार है। इस माहौल को मुहैय्या कराने का पूरा ज़िम्मा मालिक पर है और किसी भी प्रकार का उल्लंघन होने पर उसे सज़ा दी जा सकती है। इस क़ानून के विस्तार क्षेत्र में सार्वजनिक निजी खण्ड के साथ-साथ वेतनयुक्त घरेलू काम व अन्य कार्यस्थल भी शामिल हैं। इसके अलावा "मालिक" की व्यापक परिभाषा में काम की विभिन्न परिस्थितियां तथा अनौपचारिक/ असंगठित क्षेत्र भी शामिल किए गए हैं।

वास्तविक चुनौती तो इस क़ानून के कार्यान्वयन में है। आंतरिक शिकायत समितियों को नागरिक अदालत के अधिकार मुहैय्या करवाने के विवादास्पद मुद्दे के अलावा संगठित क्षेत्र में स्थानीय शिकायत समितियों की सही सक्रियता काफ़ी हद तक उनके गठन पर निर्भर करती है। मामले को संवेदनशील तरीके से निपटाने के लिए यौन उत्पीड़न से जुड़े मुद्दों से परिचित सदस्यों तथा महिला सदस्यों की मौजूदगी भी बहुत अहमियत रखती है क्योंकि कार्यस्थल पर यौन हिंसा को काम के स्थान पर असमान सत्ता संबंधों के ढांचे में देखा जाना चाहिए जिसमें निचले स्तर पर कार्यरत महिलाओं के कमज़ोर दर्जे को विशेष रूप से ध्यान में रखना होगा।

दरअसल इस क़ानून की प्रमुख खामी इसमें औरतों को "झूठी व विद्वेषपूर्ण शिकायतें" दर्ज कराने पर सज़ा के प्रावधान की मौजूदगी है। खण्ड 14 का यही प्रावधान यौन उत्पीड़न की शिकायत करने की हिम्मत दिखाने पर किसी भी महिला के पैरों तले ज़मीन खींचने का दम रखता है। *भारतीय दंड संहिता* में झूठी शिकायतों से नागरिकों को सुरक्षित रखने का प्रावधान पहले से ही मौजूद हैं लिहाज़ा इस विशेष खण्ड की मौजूदगी का मुख्य मायने यही है कि महिला अधिकारों को शक़ की नज़र से देखा जा रहा है। महिला समूहों की लगातार दरख़्वास्तों और शिकायतों के बावजूद नए क़ानून में इस प्रावधान को जोड़ा गया है और इस लिहाज़ से यह इस क़ानून की भारी कमज़ोरी है। जैसा कि *जस्टिस वर्मा कमेटी* की रिपोर्ट में उल्लेखित है—

> *हमारा मानना है कि उपरोक्त प्रावधान पूरी तरह से निदात्मक है और यह क़ानून के उद्देश्य को निष्प्रभाव बनाता है। हमारे ख्याल से इन "रेड-रैग" प्रावधानों को क़ानून में शामिल ही नहीं करना चाहिए क्योंकि इनके पीछे कोई ठोस सोच नहीं होती।*

इतने पुरज़ोर सुझावों के बावजूद इन क़ानून में यह महिला विरोधी प्रावधान मौजूद है जो औरतों के और अधिक शोषण का कारण बन सकता है। "दुरुपयोग" के लिए अत्याधिक क्षतिपूर्ति करने का अर्थ है अपने खुद के प्रतिरोध का दस्तावेज़ तैयार करना।

लक्ष्मी मूर्ति, *एच.आर.आई. इंस्टिट्यूट फ़ॉर साउथ एशियन रिसर्च एंड एक्सचेंज की निदेशक हैं।*

साभारः ई.पी.डब्ल्यू., वॉल्यूम ***XLVIII*** *न. 23*
जून 8, 2013 में पूर्व प्रकाशित